प्रस्तावना

हमारा उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत राग पर आधारित है | राग शास्त्रीय गायन-वादन का महत्वपूर्ण अंग है | परिवर्तन यह प्रकृति का अनिवार्य शाश्वत नियम है | इस परिवर्तनशील तत्व के कारण कुछ बातें हमसे दूर होती जाती है; तब कुछ नई बातें (चीज़े) हमारे सामने आती रहती हैं | इस नियम के साथ ही भारतीय संगीत में भी समयानुसार परिवर्तन देखने को मिलता है |

ऐसा कहा जाता है की मानव सभ्यता के साथ-साथ ही संगीत की उत्पत्ति हुई है | जैसे-जैसे मानव जीवन की शैली विकसित होती गई; वैसे-वैसे भारतीय संगीत में भी परिवर्तन आता रहा है | जब मनुष्य में भाषा का अभाव था तब संगीत भी भाषाहीन था | पाषाण युग में मनुष्य पत्थर का प्रयोग दैनिक जीवन में करता था | इन लोगों ने पत्थर से औज़ार बना लिये थे | पत्थर के टुकड़ों से इन्होंने मंजीरे जैसे आकर का वाद्य भी बना लिया था; जिसे 'अग्सा' कहते थे | यह लोग विभिन्न स्वरों के द्वारा ही अपने आतंरिक हर्ष एवं विषाद की अभिव्यक्ति किया करते थे | 'हूँ हूँ हेवा हूँ हूँ हेवा' जैसी विचित्र प्रकार की सांगीतिक ध्वनि निकालते थे | इसके बाद ताम्र काल के लोग धातु का प्रयोग करना अच्छी तरह जानते थे | ताम्बे के हथियार बनाना जानते थे | कुछ विद्वानों के मतानुसार भाषा का जन्म इस युग में ही हुआ मतलब की स्वरों के अन्दर शब्दों को उतारना आरम्भ कर दिया था | दुसरे युगों से इस युग का संगीत एक नवीन धारा का था | इस युग के लोगों ने सर्व प्रथम संगीत को ईश्वर आराधना का उपकरण बनाया | देवी देवताओं की पूजा-अर्चना संगीत द्वारा करते थे | इस युग में संगीत को धार्मिक रूप दिया गया | ये लोग संगीत को ईश्वर की देन मानते थे | लोह काल तथा काष्ठ युग में वाद्यों का आविष्कार हुआ | इस प्रकार समय-समय पर संगीत में परिवर्तन आता रहा |

ग्रंथों के अध्ययन से यह पता चलता है की वैदिक काल में गीतियों का गायन इसके बाद प्रबंध-गायन, तत्पश्चात ध्रुपद-गायन, इसके बाद ख्याल-गायन, ठुमरी, दादरा, ग़ज़ल, नज़म, चैती, कजरी, होरी, टप्पा, त्रिवट, तराना जैसे शास्त्रीय तथा उपशास्त्रीय संगीत की परंपरा समय के परिवर्तन के साथ-साथ प्राचीन काल से आधुनिक युग तक देखने को मिलती है |

भारतीय संगीत में संशोधन स्वरुप कितने ही परिवर्तन आये जिसमे स्वर, श्रुति, ठाट, राग, आरोह, अवरोह, जाति, राग-गायन, राग-प्रकृति, अलंकार, तान, आलाप, मींड, खटका, बोलतान, बोलबाट, इत्यादि आज अनेक संशोधनात्मक स्वरुप हमारे समक्ष आये हैं | भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा वैदिक काल से शुरू हुई तब उदात, अनुदात तथा स्वरित, तारतम, तीव्रतम, अतितिव्रतम, षडज तथा मध्यम ग्राम जैसे स्वर तथा स्वर सप्तक हमारे समक्ष आये | इसके बाद प्राचीन काल के अंत तथा मध्यकाल के दौरान श्रुति, स्वर, थाट, राग, इत्यादि विषय को लेकर कई ग्रन्थ रचे गये | इन ग्रंथों में ठाट की रचना देखने को मिली तथा थाटों के अंतर्गत रागों की रचना भी देखने को मिलती है |

संगीत के इतिहास के पन्ने पलट कर देखा जाय तो यह पता चलता है की कालानुसार समय-समय पर ग्रन्थकारों ने रागों का वर्गीकरण अपने-अपने अनुसार किया है तथा इनके समय में प्रचलित-अप्रचलित तथा नवनिर्मित रागों की चर्चा भी की है | जैसे मुसलमानों के काल का सर्व प्रथम ग्रन्थ लोचन कृत 'राग तरंगिणी' में राग-रागिनी पद्धति के स्थान पर थाट पद्धति अपनायी है तथा उन्होंने १२ थाट मानकर इनमे ७५ जन्य रागों का वर्गीकरण किया है | जौनपुर के सुलतान हुसैन शर्की ने अनेक नए रागों की रचना की जैसे जौनपुरी, तोड़ी, सिन्धु, भैरवी, रसूल तोड़ी, तथा श्याम के १२ प्रकार, सिंदूरी, इत्यादि | समय-समय पर कालानुसार (आमिर खुसरो, पंडित पुंडरिक विट्ठल, तानसेन, उस्ताद अमीर खाँ, पं. कुमार गांधर्व, पंडित

रवि शंकर, इत्यादि) वाग्येयकार, विद्वानों, पंडितो, तथा गायक-वादकों द्वारा नए रागों की निर्मिती होती रही है | दक्षिण के पंडित व्यंकट मखी ने गणित शास्त्र के द्वारा एक मेल से ४८४ रागों की उत्पत्ति बताई है |

कुछ राग जो ग्रंथों में वर्णित है; जो कई वर्षो पहले अच्छी तरह गाये बजाये जाते थे परन्तु आज वर्त्तमान में कुछ उनका स्वरुप बदला हुआ दिखाई देता है अथवा लुप्त हो गया है |

अप्रचलित राग लुप्त होने के कारण :

१. मध्यकाल में गुरु शिष्य परंपरा में वर्षो तक एक ही राग की तालीम दी जाती थी | राग की बारीकियों पे अच्छी तरह ध्यान दिया जाता था | प्रचलित राग में ही अधिक समय तक तालीम होती थी | इस कारण अप्रचलित, अप्रकाशित तथा नव निर्मित रागों की तरफ ध्यान ही नहीं जाता था | समय के अभाव के कारण अप्रचलित, अप्रकाशित एवं नए रागों की तरफ देख ही नहीं पाते थे |
२. कलाकार की दृष्टी इस बात पर रहती थी की कम से कम समय में प्रचलित रागों द्वारा श्रोतागन को आनंद प्राप्त हो |
३. कुछ श्रोता ऐसे भी होते हैं जो फ़क्त गिने-चुने रागों को सुनने आते हैं | कलाकार द्वारा प्रस्तुत किये गए सभी रागों को समझ नहीं भी पाते है तथा एकाद राग सुन के चले जाते हैं |
४. कुछ राग ऐसे हैं जो वादन शैली में ही सुनने को मिलते हैं |
५. पुराने उस्ताद लोग अपने वंशजों को ही अप्रचलित रागों की विधिवत तालीम देते थे | उनके शिष्यों को इसका लाभ नहीं मिल पाता था | बंदिशों का नोटेशन भी नहीं करते थे इस वजह से उनकी मृत्यु के साथ राग भी लुप्त हुए हैं |

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में ज्यादातर सम्पूर्ण, औडव-संपूर्ण तथा षाडव-सम्पूर्ण रागों का व्यवहार में प्रचलन अधिक देखने को मिलता

है | और श्रोताओं को भी सुना हुआ राग सुनने में ज्यादा रूचि होती है| संगीत अनंत महासागर की तरह है, कितने ही अप्रचलित अछोप राग सिर्फ ग्रंथों तक ही सिमित है | ग्रंथों में दिया हुआ राग वैभव यदि व्यवहार में गाने बजाने में नहीं आते तो धीरे-धीरे ऐसे राग लुप्त हो जाएँगे | ऐसे अप्रचलित राग को श्रोताओं के समक्ष प्रचार-प्रसार करने हेतु शोधार्थी के मन में विचार आने से इस शोध-प्रबंध के ऊपर काम करना एक नविन कार्य है |

ऐसे राग यदि आरोह, अवरोह, पकड़, पूर्वांग-उत्तरांग का चलन और बंदिश के साथ अगर ग्रंथस्त होकर संगीत जगत, संगीत जिज्ञासु और आशास्पद युवा कलाकारों एवं श्रोताओं के सामने प्रस्तुत होते हैं, तो भारतीय संगीत में अपने आप नए रागों के प्रति रूचि पैदा होगी और प्रचलित राग गाने के साथ-साथ अप्रचलित, अप्रकाशित तथा नए रागों की तैयारी करने के लिए प्रेरित होंगे |

प्रचलित राग का गायन गलत नहीं है, परन्तु पर्याप्त भी नहीं है | जीवन का दूसरा नाम सर्जनशीलता है | सभी क्षेत्रों में आज उत्कृष्ट तकनिकी और वैज्ञानिक संशोधन दिन-प्रतिदिन होते रहे हैं, तो संगीत में भी संशोधन और सर्जन की आम श्रोताओं के हित में उपयुक्त होना चाहिए, जिससे आने वाली पीढ़ी को एक नया आयाम करने का अवसर प्राप्त होगा |

जब कोई नायक या कवि बंदिश या काव्य की रचना करता है तब उसके मन में एक विशिष्ट प्रकार की संकल्पना होती है | इस संकल्पना को वे खुद तो साकार करते ही हैं साथ ही साथ जब इस कृति का महत्तम लोग लाभ उठाते हैं तब उसकी सार्थकता सिद्ध होती है |

ऐसे अप्रचलित, अप्रकाशित तथा नवीन प्रकार के बहुत सारे राग सामने आते हैं, जो बड़े-बड़े गायक गा रहे हैं परन्तु उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में उनका उल्लेख ग्रंथों में कम दिखाई देता है |

संगीत में मुलाकृति को वफादार रह कर नवीन पूर्ण सर्जन करने की गुंजाइश अधिक है | यह बात कलाकार को अच्छी तरह से समझनी चाहिए और उसके अनुसार व्यक्तिगत चेतना का आविष्कार करके मूल स्वराकृति को और भी सुंदर बना सकते हैं | कला में सर्जन और नवीनता की कमी है, तो ऐसी कला शायद अधिक दिनों तक स्थापित नहीं हो सकती है, हर नई श्वास में नयी उम्मीद के साथ सर्जन होना चाहिए यही आने वाले जीवन का प्रेरणा श्रोत है |

इस शोध ग्रन्थ में शोधार्थी द्वारा शोध की सीमा तय करते हुए कइ वाग्येकार, विद्वान तथा पंडितों द्वारा रचे हुए ''उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अप्रकाशित, अप्रचलित और नवनिर्मित औडव-ओडव, औडव-षाडव तथा षाडव-षाडव जाति के रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'' द्वारा संकलन करके ग्रंथस्त रूप में शोध-प्रबंध प्रस्तुत करने का शोधार्थी का नम्र प्रयास है | जिससे वर्तमान राग(शास्त्रीय) संगीत में एक नवीन पूर्ण संगीत का संचार होगा | इसी उम्मीद के साथ इस शोधग्रंथ की आवश्यकता शोधार्थी को वर्तमान समय में लगती है |

प्रस्तुत शोध-प्रबंध से विद्यार्थी, आशास्पद युवा कलाकारों एवं श्रोताओं तथा नयी पीढ़ी के संगीत के जिज्ञासुओं को अप्रकाशित, अप्रचलित और नवनिर्मित औडव-ओडव, औडव-षाडव तथा षाडव-षाडव जाति के रागों की जानकारी पर्याप्त रूप से इस शोध-प्रबंध ग्रंथ में संग्रहित और संपूर्ण परिचय मिल सकता है |